तृतीयव्याप्तिलक्षणम्

तृतीयलक्षणहिन्दीव्याख्याकारः

डॉ॰ विष्णुपदमहापात्रः

[न्याय-शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमति, उपमिति और शाब्द भेद से चार प्रमा और उसके साधन के रूप में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द भेद से चार प्रमाण स्वीकृत हैं। प्रत्यक्षप्रमा के प्रति इन्द्रियाँ करण और इन्द्रियार्थसन्निकर्ष व्यापार होता है। अनुमिति के प्रति व्याप्तिज्ञान करण और परामर्श व्यापार है। उपमिति के प्रति सादृश्यज्ञान करण और अतिदेशवाक्यार्थस्मरण व्यापार है। शाब्दबोध के प्रति पदज्ञान करण और पदार्थस्मरण व्यापार है। यद्यपि प्रत्यक्षप्रमाण श्रेष्ठ प्रमाण है तथापि "प्रत्यक्षपरिकलितमप्यर्थमनुमानेन बुभुत्सन्ते तर्करसिकाः त.चि.पक्ष.प्र.पृ-56" इस उक्ति के अनुसार सभी नैयायिक अनुमान में विश्वास रखते हैं, एवं अनुमान से जन्य जो अनुमिति (व्याप्तिविशिष्टपक्ष-धर्मताज्ञानजन्यज्ञानमनुमितिः-त.चि.अनु.प्र.) उसका निरूपण तत्त्वचिन्तामणिकार गंगेशोपाध्याय ने अनुमिति प्रकरण में किया है। किन्तु जिससे जन्य अनुमिति, उसका करण जो व्याप्तिज्ञान उसके विषय या घटक जो व्याप्ति वह क्या है? इस आशय में मणिकार ने व्याप्तिपंचक के निरूपणारम्भ में कहा "नन्वनुमितिहेतु-व्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिः-व्य.पं.मा.पृ-1"। अर्थात् इसके समाधान में उपोद्घातसंगति ("चिन्तां प्रकृतसिद्ध्यर्थामु-पोद्घातं विदुर्बुधाः") से पूर्वपक्ष के रूप में व्याप्ति के पाँचों लक्षणों का उपस्थापन किया-"**न तावद-व्यभिचरितत्वम्, तद्धि न साध्याभाववदवृत्तित्वम्,**

साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्, साध्यवत् प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्, सकल-साध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्, साध्यवदन्या-वृत्तित्वं वा।" किन्तु यह व्याप्ति लक्षण यथार्थ नहीं है, ऐसा स्वयं मणिकार ने स्वीकार किया है। "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इत्यादि सद्धेतु (व्याप्तिविशिष्ट-पक्षधर्मतावत्त्वं सद्धेतुत्वम्) स्थलों में लक्षणसमन्वय होने से एवं "पर्वतो धूमवान् वह्नेः" इत्यादि असद्धेतु (व्याप्तिविशिष्ट-पक्षधर्मताभाववत्त्वम्) स्थलों में लक्षणसमन्वय न होने से पाँचों लक्षणों की कोई अव्याप्ति (लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम्) एवं अतिव्याप्ति (लक्ष्यवृत्तित्वे सति अलक्ष्यवृत्तित्वम्) तो नहीं होगी, किन्तु केवलान्वयि (सर्वत्रविद्यमानत्वम्) साध्यक "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" सद्धेतु में साध्याभाव-वाच्यत्वाभावों के अप्रसिद्ध होने से इस स्थल में पाँचों लक्षणों की अव्याप्ति होगी, एवं ऐसी अव्याप्ति स्वयं मणिकार को अभिमत है। इस आशय से मणिकार ने कहा–**"केवलान्वयिन्यभावात्-व्या.पं.मा.पृ-12"**)।

तृतीयलक्षण की प्रयोजनीयता– व्याप्तिपञ्चक के प्रथम लक्षण **"साध्याभाववदवृत्तित्वम्"** अर्थात् साध्याभावाधिकरण निरूपित आधेयता का अभाव, ऐसा लक्षण स्वीकार करने पर अव्याप्यवृत्ति (निरवच्छिन्न-वृत्तिकान्यत्वमव्याप्यवृत्तित्वम्-व्या.पं.गंगा टी. पृ-60) साध्यक सद्धेतु "अयं[1] कपिसंयोगी[2] एतद्वृक्षत्वात्[3]" में

1. कपिसंयोगिन्येतत्पदार्थस्य साध्यताभ्रमनिरासार्थमयमिति पक्षनिर्देशः-सि.ल.जाग.पृ. 59, अयमित्यस्यानुपादाने कपिसंयोगी पक्षः एतदितिसाध्यमिति भ्रमनिरासार्थमयमिति पक्ष निर्देशः, सि.ल.गं.टी.पृ-59।
2. साम्प्रदायिकमते संयोगसामान्याभावस्य द्रव्येऽभावात् कपीति, सि.ल.जा.पृ-60।
3. वृक्षमात्रे कपिसंयोगाभावादेतदिति, सि.ल.जा. पृ-60।

प्रथम लक्षण की अव्याप्ति होगी, क्योंकि साध्य-कपिसंयोग, साध्याभाव-कपिसंयोगाभाव, साध्याभावाधिकरण-कपिसंयोगाभावाधिकरणमूलावच्छिन्न एतद्वृक्ष, मूलावच्छिन्न एतद्वृक्षनिरूपित वृत्तिता-आधेयता ही एतद्वृक्षत्वहेतु में विद्यमान है, तादृश आधेयता का अभाव एतद्वृक्षत्वहेतु में न होने से अव्याप्ति होती है, उसके वारण के लिए प्रथम लक्षण का परित्याग करके द्वितीय लक्षण **"साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्"** अर्थात् नव्यमत के अनुसार साध्यवद्भिन्न जो साध्याभाव तद्वन्निरूपित आधेयता का अभाव को व्याप्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। और ऐसा स्वीकार करने पर "अयं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" सद्धेतु स्थल में द्वितीय लक्षण की अव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि साध्य-कपिसंयोग, साध्यवत्कपिसंयोगवद्-एतद्वृक्ष, एतद्वृक्ष से भिन्न साध्याभाव-कपिसंयोगाभाव, उसके अधिकरण-एतद्वृक्ष नहीं होगा, किन्तु गुणादि होंगे एवं गुण निरूपित आधेयता-वृत्तिता-गुणत्व में, गुणनिरूपित आधेयता का अभाव एतद्वृक्षत्व में विद्यमान होने से उक्त स्थल में द्वितीय लक्षण की अव्याप्ति नहीं होगी। किन्तु यहाँ पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि– **"अधिकरण-भेदेनाभावभेदः"** अर्थात् अधिकरण के भेद से अभाव भी भिन्न भिन्न होता है। इस प्रकार नियम को यदि स्वीकार करते हैं तो "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इस सद्धेतु में द्वितीय लक्षण की अव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि-साध्य-कपिसंयोग, साध्यवत्-कपिसंयोगवत्-एतद्वृक्ष, साध्यवद्भिन्न-कपिसंयोगवद् एतद्वृक्ष से भिन्न यावतीय पदार्थ गुणादि, "गुणे गुणानङ्गीकारात्" अर्थात् संयोग के गुण पदार्थ होने से और गुणों में गुण के न रहने से कपिसंयोगाधिकरण से भिन्न गुण ही होगा एवं कपिसंयोगाधिकरण से भिन्न में रहने वाला जो संयोगाभाव

उसका अधिकरण भी गुण होगा, एतद्वृक्ष नहीं होगा, अधिकरण के भेद से अभाव का भेद होने पर गुणों में रहने वाला कपिसंयोगाभाव एवं मूलावच्छिन्न एतद्वृक्ष में रहने वाला कपिसंयोगाभाव परस्पर भिन्न हैं, अतः तादृश कपिसंयोगाभाव का अधिकरण गुण है एवं गुणनिरूपित आधेयता गुणत्व में, गुणनिरूपित आधेयता का अभाव एतद्वृक्षत्वहेतु में विद्यमान होने से द्वितीयलक्षण की अव्याप्ति नहीं होगी।

किन्तु जिनके मत में "**अधिकरणभेदेनाभावभेदे मानाभावात्**" अर्थात् अधिकरण के भेद होने पर भी अभाव भिन्न नहीं हैं, उनके मत में तो "अयं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इस सद्धेतु में द्वितीय लक्षण की अव्याप्ति होगी, क्योंकि साध्य-कपिसंयोग, साध्यवत्-कपिसंयोगवत्-एतद्वृक्ष आदि, साध्यवद्भिन्न-एतद्वृक्ष से भिन्न गुणादि, कपिसंयोगवत् एतद्वृक्ष से भिन्न गुणादि में रहने वाला साध्याभाव-कपिसंयोगाभाव, ऐसे कपिसंयोगाभाव का अधिकरण (साध्याभाववत्) गुणादि, किन्तु अधिकरण के भेद से अभाव के भेद न होने पर गुणों में रहने वाला कपिसंयोगाभाव एवं मूलावच्छिन्न एतद्वृक्ष में रहने वाला कपिसंयोगाभाव परस्पर अभिन्न होते हैं, अतः कपिसंयोगाभाव का अधिकरण जैसे गुण को लिया जा सकता है वैसे ही कपिसंयोगाभाव का अधिकरण मूलावच्छिन्न एतद्वृक्ष को भी लिया जा सकता है। वैसे मूलावच्छिन्न एतद्वृक्षनिरूपित वृत्तिता-आधेयता ही एतद्वृक्षत्व में विद्यमान है, एवं तन्निष्ठ आधेयता का अभाव एतद्वृक्षत्व हेतु में अविद्यमान होने से उक्त सद्धेतु में द्वितीय लक्षण की अव्याप्ति होती है। अतः "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इस स्थल में द्वितीय लक्षण की जो अव्याप्ति है उसके निवारण के लिए तृतीयलक्षण का प्रदर्शन करना अत्यन्त आवश्यक

है। इस सन्दर्भ में दीधितिकार पं. रघुनाथ शिरोमणि का कथन है "कर्मादौ संयोगाद्यभावस्य भिन्नत्वे मानाभावादाह "साध्यवद्" इति व्या.स.सा. पृ-223. अर्थात् कर्मवृत्तिसंयोगाभाव, गुणवृत्तिसंयोगाभाव, द्रव्यवृत्तिसंयोगाभाव ये तीन परस्पर भिन्न हैं, इसमें कोई प्रमाण नहीं है, अर्थात् सभी अभाव एक हैं। यहाँ पर प्रश्न उठता है कि दीधितिकारने "कर्मादौ" कैसे कहा, "गुणादौ" कहना चाहिए था। इसके समाधान में विवृतिटीकाकार पं. वामाचरण कहते हैं, "कर्मपदं द्रव्यभिन्नलक्षणकम्, आदिपदं तु तादृशार्थतात्पर्यग्राहकमित्याशयेन कर्मादावित्युक्तम्, तथा च द्रव्यभिन्नवृत्तिसंयोगाभावस्य द्रव्यवृत्तिसंयोगाभावाद्भिन्नत्वे मानाभावादित्यर्थः पर्यवसितः व्या.पं.जा. पृ-10" अर्थात् कर्मपद द्रव्यभिन्न का लक्षक है, एवं वक्ता का तात्पर्य से कर्मपद से द्रव्यभिन्न में रहने वाला संयोगाभाव और द्रव्य में रहने वाला संयोगाभाव परस्पर भिन्न हैं इसमें कोई प्रमाण नहीं है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी "कर्मादौ" पद से गुण का ग्रहण हो सकता है, जैसे–"गुणादावित्युक्तौ गुणस्यादिरिति–व्युत्पत्त्या द्रव्यस्यापि लाभः स्यादतः कर्मादावित्युक्तम्। कर्मादावित्युक्तौ च कर्मणः आदिरिति व्युत्पत्त्या गुणस्य लाभसंभवेऽपि न क्षतिः" व्या.पं.मनो. पृ-100", इस प्रकार आशय को ग्रहण करते हुए पं. जगदीशतर्कालंकार कहते हैं–"'भिन्नत्वे' इति। द्रव्यनिष्ठसंयोगाभाववतो भिन्नत्व इत्यर्थः। मानाभावादिति। तथाचात्राव्याप्यवृत्तिसाध्यक-सद्धेतावव्याप्तिरिति भावः। व्या.पं.जा.पृ-100"। गदाधर के मत में द्रव्यवृत्तिसंयोगाभाव और गुणवृत्तिसंयोगाभाव परस्पर भिन्न हैं इसमें प्रमाण भी है (एवञ्च द्रव्यवृत्तिसंयोगाभावगुणवृत्तिसंयोगाभावयोर्भेदः सप्रमाण एव गा.व्या.स.सा.पृ-224)। यह स्वीकार करते हुए भी "कर्मादौ" इस प्रकार दीधितिकार के कथन को ध्यान

में रखते हुए द्वितीय लक्षण की अव्याप्यवृत्तिसाध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति के निवारण हेतु तृतीयलक्षण का अवतरण किया गया।"....इत्यभिप्रायेणा-व्याप्यवृत्ति-साध्यकस्थलेऽव्याप्त्या लक्षणान्तरमवतारयति "कर्मादौ" इति गा.व्या.स.सा. पृ-224।" उपर्युक्त कारणों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि दीधितिकार, गदाधर, जगदीश एवं मथुरानाथ को अभिमत है कि अव्याप्यवृत्तिसाध्यक सद्धेतु "अयं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्, अयं संयोगी द्रव्यत्वात्" स्थलों में द्वितीय लक्षण की अव्याप्ति होगी उसके निवारण के लिए तृतीय लक्षण की अत्यन्त प्रयोजनीयता है।

विशेष– नव्य के मत में "संयोगी द्रव्यत्वात्" इस प्रकार अव्याप्यवृत्ति साध्यकसद्धेतु में प्रथम लक्षण की अव्याप्ति वारण करने के लिए साध्याभाव में साध्यवद्भिन्नत्व को विशेषण के रूप में दिया गया है। इस संदर्भ में स्वयं मथुरानाथ ने कहा– "एवञ्च साध्यवद्भिन्नवृत्तीत्यनुक्तौ संयोगी द्रव्यत्वादित्यादाव-व्याप्तिः।" इसे पुष्ट करते हुए व्याप्तिपंचक के टीकाकार पं. वामाचरण भट्टाचार्य कहते हैं– "गुणादिवृत्ति-संयोगाभावस्य द्रव्यवृत्तिसंयोगाभावादतिरिक्तत्वे प्रमाणाभावाद् द्वितीयलक्षणे संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिरस्त्येव, अतस्तद्वारणायाभिधीयमानं तृतीयलक्षणं व्याख्यातुमुपक्रमते "साध्येति" व्या.पं.वि.टी. पृ-68। इसकी अत्यन्त पुष्टि व्याप्तिसिद्धान्तलक्षण में होती है–"यत्तु-इदं संयोगि द्रव्यत्वादित्यत्राव्याप्तिवारणाय तत् (प्रतियोग्यसमानाधि-करणान्तम्)-व्या.सि.ल.दी. पृ-60।" घटः संयोगी द्रव्यत्वात् यहाँ पर साध्य-संयोग, संयोगवत् (साध्यवत्)-द्रव्य, साध्यवत्-संयोगवत् द्रव्य भिन्न गुणादि में रहने वाला साध्याभाव-संयोगाभाव उसका अधिकरण गुण होता है किन्तु अधिकरण के भेद से अभाव का भेद

न मानने पर संयोगाभाव का अधिकरण जैसे गुण होता है वैसे ही संयोगाभाव का अधिकरण द्रव्य भी होता है (द्रव्ये संयोगसामान्याभावे मानाभावात्-व्या.सि.ल.दी. पृ-63)। अत: संयोगवद्भिन्न में रहने वाला संयोगाभाव का अधिकरण द्रव्य को लिया जा सकता है। तादृश द्रव्य निरूपित वृत्तिता के द्रव्यत्व हेतु में विद्यमान होने से उक्त स्थल में द्वितीय लक्षण की अव्याप्ति होगी। उसके निवारण हेतु तृतीय लक्षण का अवतरण किया गया है।

तृतीयलक्षण में अव्याप्तिवारण प्रकार– अधिकरण के भेद से अभाव भिन्न भिन्न नहीं है इस प्रकार नियम के स्वीकार करने पर द्वितीय लक्षण की उक्त स्थलों में जो अव्याप्ति, उसके वारण के लिए मणिकार व्याप्ति का तृतीय लक्षण बताते हैं–**"साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्।"** "अयं कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" यहाँ पर साध्य-कपिसंयोग, साध्यवत्-कपिसंयोगवत् (एतद्वृक्ष), साध्यवत् प्रतियोगी है जिस अन्योन्याभाव का, अर्थात् साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावकपिसंयोगवान् न या कपिसंयोगवद् भेद:। इस प्रकार अन्योन्याभाव का प्रतियोगी (यस्याभाव: स प्रतियोगी) कपिसंयोगवान्। एवं "कपिसंयोगवान् न" इस प्रकार अन्योन्याभाव का अधिकरण एतद्वृक्ष नहीं होगा। क्योंकि कपिसंयोगवत्पदार्थ एतद्वृक्ष है, (स्वस्मिन् स्वभेदानभ्युपगमात्) स्व में स्व के भेद न होने से कपिसंयोगवद् एतद्वृक्ष का भेद एतद्वृक्ष में नहीं हो सकता, अत: कपिसंयोगवद् भेद (साध्यवत्प्रतियावेगिकान्योन्याभाव) का अधिकरण गुणादि ही होंगे। एवं गुण निरूपित आधयेता (सामानाधिकरण्य-वृत्तित्व, असामानाधिकरण्य-अवृत्तित्व) गुणत्व में, गुणनिरूपित आधेयता का अभाव एतद्वृक्षत्व हेतु में विद्यमान होने

से उक्त सद्धेतु में तृतीयलक्षण की अव्याप्ति नहीं होगी। एवं "संयोगी द्रव्यत्वात्" यहाँ पर साध्य-संयोग, साध्यवत्-संयोगवत्-द्रव्य, साध्यवत्प्रतियोगिकान्यो-न्याभाव-"द्रव्यं न" या द्रव्यभेद, उसका अधिकरण गुणादि, तन्निरूपित वृत्तिता-गुणत्व में तादृश वृत्तित्व के अभाव द्रव्यत्व में होने पर तृतीय लक्षण की अव्याप्ति नहीं होगी।

विशेष– द्वितीय लक्षण में "अधिकरण के भेद से अभाव भिन्न भिन्न है" इस नियम की क्या आवश्यकता पड़ी? इसके समाधान में यह कहा जा सकता है कि द्वितीय लक्षण जो कि साध्यवद्भिन्न में जो साध्याभाव, तदधिकरण निरूपितवृत्तित्वाभाव है, उसमें साध्याभाव और अधिकरण का प्रवेश है, अर्थात् द्वितीयलक्षण अत्यन्ताभाव से घटित है और उसमें अत्यन्ताभावाधि-करणत्व का प्रवेश है, तृतीय लक्षण अन्योन्याभाव से घटित है, उसमें अत्यन्ताभावाधिकरण के प्रवेश न होने से तृतीय लक्षण में इस नियम की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु द्वितीय लक्षण अत्यन्ताभावाधिकरणत्व से घटित होने के कारण द्वितीय लक्षण में उस नियम की आवश्यकता है।]

चिन्तामणिः

साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम्।

साध्यवान् प्रतियोगी यस्यासौ साध्यवत्प्रतियोगिकोऽन्योन्याभावः, तदसामानाधिकरण्यं-तदधिकरणवृत्तित्वाभाव, अर्थात् साध्यवत् है प्रतियोगि जिस अन्योन्याभाव का-साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव, तदधिकरण निरूपित आधेयता का अभाव व्याप्ति है।

विशेष– साध्यमस्यास्तीति साध्यवत्-वतुप् प्रत्ययः, प्रतियोगी (यस्याभावः स प्रतियोगी)- जिसका अभाव वह प्रतियोगी पदार्थ है, और जिसमें अभाव वह अनुयोगी पदार्थ है (यत्र)। जैसे "घटाभाववद्

भूतलम्" यहाँ पर घट प्रतियोगी और भूतल अनुयोगी है। "घटाभाव:" या "घटो नास्ति" को न्याय की भाषा में "घटप्रतियोगिकोऽभाव:" एवं "घटवान् नास्ति" को "घटवत्प्रतियोगिकोऽभाव:" कहा जाता है। अन्योन्याभाव स्थल में भी "घटो न" को "घटप्रतियोगिक भेद:" एवं "घटवान् न" को "घटवत्प्रतियोगिक भेद:" (अन्योन्याभाव) कहा जाता है। क्योंकि एक पदार्थ में अपर पदार्थ का अन्वय होने में सम्बन्ध सापेक्षित होता है। जैसे घट या घटवान् पदार्थ का नञर्थ अभाव या भेद में स्वनिष्ठप्रतियोगिकत्व संसर्ग सापेक्षित है। अत्यन्ताभाव का प्रतियोगि के अधिकरण के साथ विरोध होता है, अर्थात् जहाँ घटात्यन्ताभाव रहता है वहाँ उसके प्रतियोगि घट नहीं रहता है। एवं अन्योन्याभाव का स्वप्रतियोगि के साथ विरोध होता है, अर्थात् "घटो न" इस अन्योन्याभाव का जो प्रतियोगि घट है उस घट में "घटो न" भेद नहीं रह सकता। अत्यन्ताभाव:– "नित्य संसर्गाभावत्वम्", और यह अत्यन्ताभाव तादात्म्यातिरिक्तसम्बन्धावच्छिन्न होता है। अन्योन्याभाव:–"तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव:", यह अभाव तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न होता है। तादात्म्य का अर्थ अभेद है–अभेदस्तादात्म्यम्–व्यु. वा.।

माथुरी

"साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव" इति। हेतौ साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभाव इत्यर्थ:।

मणिकार के तृतीय लक्षण की व्याख्या करते हुए मथुरानाथ जी कहते हैं, "हेतौ साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभाव इत्यर्थ:।" अर्थात् साध्यवत्–साध्यविशिष्ट है प्रतियोगी जिसका, इस प्रकार का अन्योन्याभाव-भेद, उसका असामानाधिकरण अर्थात् अधिकरण निरूपित आधेयता का अभाव। अर्थात् उक्त अन्योन्याभाव के साथ हेतु यदि एक अधिकरण में नहीं रहता है तो तादृश असामानाधिकरण्य धर्म ही व्याप्ति होगी।

विशेष– भेद का अधिकरण और भिन्न इन दोनों के समानार्थक होने से तृतीय लक्षण का स्वरूप ध्वनित होता है–"साध्यवद्भिन्न-निरूपितवृत्तित्वाभाव" व्याप्ति। प्रकृत में भी साध्यवत्प्रतियोगिकान्यो-

न्याभावाधिकरण का अर्थ साध्यवद्भिन्न ही है। एवं तृतीयलक्षण का स्वरूप यदि साध्यवद्भिन्न- निरूपितवृत्तित्वाभाव है तो पञ्चम लक्षण के साथ तृतीयलक्षण का अभेद की आपत्ति आयेगी। क्योंकि पञ्चम लक्षण है "साध्यवदन्यावृत्तित्वम्" अर्थात् अन्य, भिन्न, भेदाधिकरण इन तीनों समानार्थक होने से पञ्चमलक्षण का स्वरूप बनता है "साध्यवद्भिन्ननिरूपित-वृत्तित्वाभाव। अतः दोनों लक्षणों में समानता होने के कारण अभेद की आपत्ति होती है। इसकी विस्तृत चर्चा अग्रिम प्रकरण में करेंगे।

तृतीयलक्षण में समन्वय प्रकार– "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" यह सद्धेतु स्थल है, यहाँ पर पर्वत पक्ष,[1] वह्नि साध्य,[2] और धूम हेतु[3] है। धूम हेतु में वह्नि साध्य की व्याप्ति रहती है। अर्थात् दोनों के बीच का सम्बन्ध-साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्य है। अर्थात् व्याप्ति सम्बन्ध से अतिरिक्त पदार्थ नहीं है। प्रकृत स्थल में साध्य-वह्नि, साध्यवत्-वह्निमत्-पर्वतादि, वह्निमत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव का आकार है "वह्निमान् न या वह्निमद् भेदः" इस प्रकार अन्योन्याभाव या भेद का अधिकरण पर्वतादि नहीं होंगे (स्वस्मिन् स्वभेदानभ्युपगमात्), किन्तु जलह्रदादि होंगे, तादृश जलह्रद निरूपित वृत्तिता-आधेयता मीनादि में, तादृश आधेयता का अभाव धूम में रहने से "वह्निमान् धूमात्" इस स्थल के धूम हेतु में तृतीय लक्षण की संगति होती है।

"पर्वतो धूमवान् वह्नेः" यह असद्धेतु (व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म-त्वाभाववत्त्वमसद्धेतुत्वम्) स्थल है, क्योंकि वह्नि हेतु की पर्वतवृत्तिता तो है किन्तु अयःगोलकादि में धूम साध्य के अविद्यमान होने से धूम की व्याप्ति वह्नि में नहीं होती है। अतः यह हेतु व्याप्तिलक्षण का लक्ष्य नहीं है। प्रकृत में साध्य-धूम, साध्यवत्-धूमवत्-पर्वतादि, साध्यवत्-धूमवत्-प्रतियोगिकान्योन्याभाव-धूमवान् न या धूमवद्भेद इस प्रकार का भेद का अधिकरण अयःगोलक ही होगा, न कि पर्वतादि, एवं अयःगोलकनिरूपित आधेयता के वह्निहेतु में विद्यमान होने से असद्धेतुस्थलीय

1. सन्दिग्धसाध्यवान् पक्षः।
2. साधनेन यत्साध्यते तत्साध्यम्।
3. हेतौ पञ्चमी।

वह्नि हेतु में तृतीय लक्षण के समन्वय नहीं होने पर कोई अतिव्याप्ति भी नहीं हुई।

"घट संयोगी द्रव्यत्वात्" यह सद्धेतु स्थल है। साध्य-संयोग, संयोगवत्-साध्यवत्-द्रव्य है, साध्यवत्-संयोगवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव-संयोगवान् न या संयोगवद् भेद, इस भेद का अधिकरण गुणादि है, गुणनिरूपित आधेयता गुणत्व में, गुणनिरूपित आधेयता का अभाव द्रव्यत्व में विद्यमान होने से द्रव्यत्व हेतु में तृतीयलक्षण की संगति होती है।

माथुरी

"अन्योन्याभावश्च प्रतियोग्यवृत्तित्वेन विशेषणीयस्तेन साध्यवतोव्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तावपि नाऽसम्भवः।"

"हेतौ साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावः" इस प्रकार तृतीय लक्षण को यथाश्रुत रखा जाय तो "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इस स्थल के धूमहेतु में व्याप्तितृतीयलक्षण की अव्याप्ति होगी। क्योंकि साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव पद से जैसे वह्निमद् भेद इस प्रकार अन्योन्याभाव ग्रहण किया जाता है, और यह भेद पर्वतादि में नहीं रहता है, वैसे ही "एकसत्त्वेऽपि द्वयं नास्ति" इस न्याय के आधार पर साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावपद से वह्निमद्घटोभयं न या उभय भेद को लिया जा सकता है, ऐसे वह्निमद्घटोभय भेद के अधिकरण पर्वतादि होंगे। तादृश पर्वत निरूपित आधेयता के धूमहेतु में विद्यमान होने से धूमहेतु में तृतीयलक्षण की अव्याप्ति होगी।

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि मथुरानाथ ने असम्भव (लक्ष्यमात्रा-वृत्तित्वम्) शब्द का प्रयोग क्यों किया। इसका आशय यह है कि उभयवृत्तिधर्मावच्छिन्न (व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्न) प्रतियोगिताकान्योन्याभाव, अर्थात् "वह्निमान् धूमात्" यहाँ पर जिस प्रकार उभयवृत्तिधर्मावच्छिन्न-प्रतियोगिताकभेद "वह्निमद्घटोभय भेद" को लेकर जैसे अव्याप्ति होती है, वैसे ही उभयवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद अर्थात् साध्यवत्तद-तिरिक्तपदार्थ एतदुभय भेद को अङ्गीकार करके सर्वत्र सद्धेतु स्थलों में

तृतीय लक्षण का समन्वय नहीं हो पायेगा। अतः मथुरानाथ ने अव्याप्ति शब्द का उल्लेख न करते हुए असम्भव शब्द का प्रयोग किया है। इसको दृष्टि में रखकर मथुरानाथ ने लिखा है "साध्यवतो व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तौ असम्भवः।"

विशेष– "व्यासज्यवृत्तित्वम्-एकत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्याप्तिकान्यत्वम्। व्यासज्यवृत्तिधर्मः-उभयवृत्तिधर्मः-उभयत्वम्-न्या.सि.मु. कि.टी.पृ-233।" अर्थात् न्यायशास्त्रकारों ने उभयवृत्तिधर्म-उभयत्व को ही व्यासज्यवृत्तिधर्म कहा है। अर्थात् "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" यहाँ पर धूमाधिकरण पर्वतादि में वह्नि के विद्यमान होने से वह्न्यभाव नहीं रह सकता, किन्तु जल के पर्वतादि में अभाव होने पर "एकसत्त्वेऽपि द्वयं नास्ति" इस न्याय से वह्निजलोभयाभाव को पर्वतादि में लिया जा सकता है, ऐसे उभयाभाव की प्रतियोगी वह्निजलोभय हैं। प्रतियोगिता-उभय में, प्रतियोगितावच्छेदक-वह्नित्वजलत्वोभयत्व, तदवच्छिन्नवह्निजलोभय, वह्नि-जलोभयाभाव की प्रतियोगिता वह्निजलोभय में रहती है। अतः ऐसी प्रतियोगिता व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्ना होती है। अन्योन्याभावघटित लक्षण में भी "वह्निमद्घटोभय भेद" की प्रतियोगिता वह्निमद्घटोभय में रहती है। अतः ऐसी प्रतियोगिता व्यासज्यवृत्ति उभयत्वधर्म से अवच्छिन्ना होती है।

असम्भव वारण प्रकार– व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव-वह्निमद्घटोभयं न इत्याकारक अन्योन्याभाव को लेकर सर्वत्र सद्धेतु स्थलों में जो असम्भव प्रदर्शन किया गया है उसके निवारण के लिए मथुरानाथ जी कहते हैं "अन्योन्याभावश्च प्रतियोग्यवृत्तित्वेन-विशेषणीयस्तेन.....नासम्भवः।" अभिप्राय यह है कि–तृतीय लक्षण में प्रविष्ट साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव को प्रतियोग्यवृत्तित्व से विशेषित होना चाहिए। अर्थात् ऐसा साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव को ग्रहण करना होगा जो स्वप्रतियोगी में वृत्ति न हो। अर्थात् व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव न हो, अर्थात् व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्न-प्रतियोगिताकान्योन्याभाव को ही ग्रहण करना होगा। एवं स्वप्रतियोग्यवृत्तित्व से विशेषित तादृश अन्योन्याभाव को ग्रहण करने पर असम्भव भी नहीं होगा। क्योंकि प्रतियोग्यवृत्तिवह्निमत्प्रतियोगिताकान्योन्याभाव पद से

"वह्निमद्घटोभयं न" इस प्रकार का अन्योन्याभाव को नहीं ले सकते। क्योंकि इस प्रकार का अन्योन्याभाव के प्रतियोगी वह्निमद् और घट उभय है, और यह अन्योन्याभाव अपने प्रतियोगि वह्निमद् पर्वतादि में रहता है, अतः अन्योन्याभाव को प्रतियोग्यवृत्ति अन्योन्याभाव पद से सिर्फ वह्निमान् न" इस प्रकार का अन्योन्याभाव ही लिया जा सकता है। वैसे वह्निमान् न इस भेद का अधिकरण जलहृदादि होंगे, तन्निरूपित आधेयता का अभाव धूमहेतु में विद्यमान होने से असम्भव नहीं होगा।

माथुरी

नन्वेवमपि नानाधिकरणकसाध्यके वह्निमान् धूमा-दित्यादौ साध्याधिकरणीभूततत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-कान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तेरव्याप्तिर्दुर्वारेति। प्रतियोग्यवृत्ति-त्वमपहाय साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव-विवक्षणे तु पञ्चमेन सह पौनरुक्त्यमिति चेत्-

स्वप्रतियोगिताश्रयावृत्तित्व (प्रतियोग्यवृत्तित्व) से विशेषित साध्य-वत्प्रतियोगिताकान्योन्याभावाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव स्वरूप तृतीय लक्षण स्वीकार करने पर नानाधिकरणक साध्यक "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" स्थलीय धूमहेतु में व्याप्ति तृतीय लक्षण की अव्याप्ति होगी। क्योंकि साध्य-वह्नि, साध्यवत्-वह्निमत्-पर्वत, गोष्ठ, चत्वर महानसादि (वह्न्यधिकरण अनेक हैं)। प्रतियोग्यवृत्ति साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव पद से महानसं न इत्याकारक अन्योन्याभाव, अर्थात् प्रतियोग्यवृत्ति तत्तद्वह्निमत्प्रतियोगिताकान्योन्याभाव–महानसं न इस प्रकार का भेद, इसका प्रतियोगि महानस है, प्रतियोगिभूत महानस में महानस भेद नहीं रहता है, अतः प्रतियोग्यवृत्ति साध्यवत्-वह्निमत्-महानसप्रतियोगिकान्योन्याभाव-महानसं न इस प्रकार का अन्योन्याभाव, ऐसे महानस भेद के अधिकरण पर्वतादि, पर्वतनिरूपित वृत्तिता ही धूम में है, पर्वतनिरूपितवृत्तिता का अभाव धूमहेतु में अविद्यमान होने से धूमहेतु में तृतीयलक्षण की अव्याप्ति होती है। अर्थात् उभयाभाव को लेकर "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" स्थल के धूमहेतु में जो अव्याप्ति का प्रदर्शन किया गया था उसका वारण के लिए प्रतियोग्यवृत्तित्व विशेषित अन्योन्याभाव घटित लक्षण को स्वीकार किया

गया था, वैसे प्रतियोग्यवृत्तित्व विशेषित अन्योन्याभावघटित लक्षण को स्वीकार करने पर भी तत्तत्साध्यवद् व्यक्ति का भेद को लेकर नानाधिकरण साध्यक "वह्निमान् धूमात्, गुणवान् द्रव्यत्वात्" इत्यादि स्थलों में अव्याप्ति होगी ही, इसको दृष्टि में रखकर मथुरानाथ ने कहा–"नन्वेवमपि नानाधिकरणकसाध्यके.....हेतोर्वृत्तेरव्याप्तिर्दुर्वारेति।"

विशेष– "नानात्वं-स्वप्रतियोगिवृत्तित्व-स्वानुयोगिवृत्तित्वोभय-सम्बन्धेन भेदविशिष्टत्वम्। स्वपदेन तत्तदधिकरणभेदो ग्राह्यः। तथा च तादृशभेदविशिष्टाधिकरणताश्रयीभूतं यस्य साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नस्य, एवम्भूतं नानाधिकरणं साध्यं यस्य धूमादेः, तादृशनानाधिकरणकसाध्यके वह्न्यादिसाध्यकधूमादावित्यर्थः–व्या.पं.मा.विवृ.टी.पृ-69।" अर्थात् जिस धूमादि का नानाधिकरण साध्य है वह नानाधिकरणक साध्यक, जैसे वह्निमान् धूमात्, गुणवान् द्रव्यत्वात् आदि।

माथुरीकार मथुरानाथ ने पूर्व में असम्भव दोष का प्रतिपादन किया था, वर्तमान अव्याप्ति कहा, आशंका होती है यहाँ भी ग्रन्थकार को असम्भव कहना चाहिए था। इसके समाधान में यह समझना चाहिए कि मथुरानाथ ने नानाधिकरणकसाध्यकस्थल के सन्दर्भ में कहा है, न कि एकाधिकरणकसाध्यक सन्दर्भ में, अर्थात् एकाधिकरणक साध्यकस्थल में प्रतियोग्यवृत्तित्व से विशेषित अन्योन्याभाव घटित तृतीयलक्षण स्वीकार करने पर भी कोई अव्याप्ति नहीं होगी, अतः असम्भव न कहकर अव्याप्ति कहा। जैसे "एतत्फलं एतद्रूपवान् एतद्रसात्" यहाँ पर एतत्फल पक्ष, एतद्रूप साध्य और एतद्रस हेतु है। साध्य और हेतु दोनों पक्ष मात्र में ही हैं। प्रतियोग्यवृत्ति-साध्य-एतद्रूप, साध्यवत्-एतद्रूपवत्-एतत्फल प्रतियोगिकान्योन्याभाव "एतत्फलं न" इस प्रकार का अभाव, इसका प्रतियोगि एतत्फल है, प्रतियोगिभूत एतत्फल में एतत्फल का भेद न होने से "एतत्फलं न" यह भेद प्रतियोग्यवृत्ति अन्योन्याभाव हुआ। तादृश "एतत्फलं न" इस भेद का अधिकरण अपरफल और घटादि, अपरफल एवं घटादि निरूपित वृत्तिता अपरफलत्व और घटत्वादि में, तन्निरूपित वृत्तित्वाभाव के एतद्रस हेतु में विद्यमान होने से एकाधिकरणक साध्यक सद्धेतु में तृतीय लक्षण की अव्याप्ति नहीं होगी, इसलिए असम्भव का उच्चारण न करके अव्याप्ति कही गयी।

अव्याप्ति वारण प्रकार– नानाधिकरणक साध्यक "वह्निमान् धूमात्" सद्धेतु स्थल में अव्याप्ति वारण के लिए प्रतियोग्यवृत्तित्व विशेषण का परित्याग करके साध्यवत्त्वावच्छिन्न इत्यादि घटित तृतीय लक्षण स्वीकार करने पर उक्त स्थल में अव्याप्ति नहीं होगी, इस संदर्भ में मथुरानाथ ने कहा–"प्रतियोग्यवृत्तित्वमपहाय साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-कान्योन्याभाव विवक्षणे।" अर्थात् साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभा-वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव के लक्षण करने पर अव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि साध्यवत्त्वावच्छिन्न का तात्पर्य है–साध्यवह्नि, साध्यवत्-वह्निमत्-पर्वतादि, साध्यवत्त्व-वह्निमत्व, साध्यवत्त्वावच्छिन्न-वह्निमत्वावच्छिन्न यावत् वह्निमान् पर्वतमहानसादि हैं। अतः वह्निमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव पद से वह्निमत्वावच्छिन्नं न (सकलवह्निमान् न) इस प्रकार का भेद ग्रहण किया जाएगा, एकवह्निमत् व्यक्ति का भेद ग्रहण नहीं किया जा सकता। तादृश वह्मिमत्वावच्छिन्न भेद का अधिकरण जलहृदादि होंगे, पर्वतादि नहीं होंगे। जलहृदनिरूपित आधेयता मीनादि में, जलहृदनिरूपित आधेयता का अभाव धूम हेतु में विद्यमान होने से अव्याप्ति नहीं होगी।

विशेष– साध्यवत्त्वावच्छिन्ना-साध्यवत्त्वेतरधर्मानवच्छिन्ना या प्रतियोगिता तन्निरूपकान्योन्याभावस्य विवक्षणे त्वित्यर्थः। अर्थात् साध्यवत्त्व से जो इतर धर्म उससे अनवच्छिन्न जो प्रतियोगिता। प्रकृत में वह्निमान् धूमात् यहाँ पर वह्निमत्व धर्म से इतर धर्म घटत्वादि, तादृश धर्म से अनवच्छिन्न प्रतियोगिता वह्निमत्वावच्छिन्नभेदीय वह्निमन्निष्ठ प्रतियोगिता ही होगी।

पुनरुक्तिदोष प्रदर्शन– साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्यो-न्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव स्वरूप व्याप्ति के तृतीय लक्षण स्वीकार करने पर तृतीयलक्षण पञ्चमलक्षण के साथ अभिन्न हो जायेगा। इस सन्दर्भ में मथुरानाथ ने कहा– "साध्यवत्त्वावच्छिन्न.....विवक्षणे तु पञ्चमेन सह पौनरुक्त्यमिति।" क्योंकि मणिकार का पञ्चमलक्षण है "साध्यवदन्यावृत्तित्वम्"। इस लक्षण में प्रविष्ट अन्य पद का अर्थ भेदाधिकरण या भिन्न है, अर्थात् इन शब्दों के समानार्थक होने से, एवं नानाधिकरणक साध्यक सद्धेतु में पञ्चम लक्षण की अव्याप्ति वारण के लिए पञ्चम लक्षण को भी साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्यो-

न्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव रूप स्वीकार करना है, अतः दोनों लक्षणों के पदपदार्थ समान होने से पुनरुक्ति दोष होगा।

विशेष– पुनरुक्तिः– एकार्थबोधकानेकपदोक्तिः– सर्वतन्त्र-सिद्धान्तपदार्थलक्षणसंग्रहः पृ. 127।

पुनरुक्तम् (निग्रहस्थानम्)– शब्दार्थयोः पुनर्वचनं पुनरुक्तमन्यत्रा-नुवादात्-(गौ.सू. 5/2/4)। अन्यत्रानुवादाच्छब्दपुनरुक्तमर्थपुनरुक्तं वा। तेन पुनरुक्तं शब्दपुनरुक्तार्थपुनरुक्तभेदेन द्विविधम् इति बोध्यते। नित्यः शब्दः नित्यः शब्दः इति शब्दपुनरुक्तम्। अर्थपुनरुक्तम्-नित्यः शब्दः निरोधधर्मको ध्वानः इति-वात्स्या. 5/2/4। "सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदेवार्थं गमयति" "प्रत्युच्चारणं शब्दो भिद्यते" इत्यादि न्याय से जैसे "नीलो घटः" यहाँ पर नील पद के उत्तर "सु" विभक्ति, एवं घट पद के उत्तर "सु" विभक्ति उच्चारण के भेद से दोनों परस्पर भिन्न हैं, वैसे ही तृतीय लक्षण में प्रतिपादित शब्द एवं पञ्चम लक्षण में प्रतिपादित शब्द इन दोनों के उच्चारण में भेद होने से परस्पर भिन्न है। अतः पुनरुक्ति नहीं होगी। किन्तु ऐसा कहने पर माथुरीकार के कथन में न्यूनता आयेगी। ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मणिकार, दीधितिकार, गदाधर, और जगदीश ने भी कहीं पर व्याप्तिपंचक में पुनरुक्ति दोष का उपस्थापन नहीं किया है तो कैसी पुनरुक्ति। इस सन्दर्भ गदाधर ने स्थल विशेष में दीधितिकार के मत को खण्डन करते हुए कहा–"न हि कस्यचिद्, ग्रन्थकृतो विपरीतलेखनं युक्तिबलाद्वस्तुसिद्धौ बाधकम्-व्यु.वा.पृ.38।"

माथुरी

न। वक्ष्यमाणकेवलान्वय्यव्याप्तिवदस्याप्यत्र दोषत्वात्।

पुनरुक्तिदोष का वारण–तृतीय लक्षण में पुनरुक्तिदोष का प्रदर्शन करना संगत नहीं है, क्योंकि साध्यवत्वावच्छिन्न आदि से घटित तृतीय लक्षण स्वीकार करने पर पुनरुक्ति की आपत्ति आयेगी, तृतीय लक्षण पूर्ववत् प्रतियोग्यवृत्ति साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावाधिकरण-निरूपितवृत्तित्वाभाव स्वरूप ही है। किन्तु ऐसा लक्षण के स्वीकार करने पर नानाधिकरणक साध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति तो बनी रहेगी। तव

मथुरानाथ कहते हैं जैसे "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" इति केवलान्वयि साध्यक सद्धेतु में ग्रन्थकार (मणिकार) को अव्याप्ति अभीष्ट है अर्थात् साध्य-वाच्यत्व, साध्यवत्-वाच्यत्ववत्, वाच्यत्व के केवलान्वयि होने से वाच्यत्ववत् समस्त संसार है, वाच्यत्ववत्प्रति- योगिताकभेद के अप्रसिद्ध होने से यहाँ पर अव्याप्ति जैसे अभिमत है, वैसे ही नानाधिकरणकसाध्यकसद्धेतु में तृतीयलक्षण की अव्याप्ति अभिमत है। अतः तृतीय और पञ्चम इन दोनों लक्षणों के परस्पर में भिन्न होने से पुनरुक्ति नहीं होगी।

माथुरी

न च तथापि साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावमात्रस्यै-वैतल्लक्षणघटकत्वे वक्ष्यमाणकेवलान्वय्यव्याप्तिरत्रासङ्गता, केवलान्वयिसाध्यकेऽपि साध्याधिकरणीभूततत्तद्व्यक्तित्वा-वच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य प्रसिद्धत्वादिति वाच्यम्।

प्रतियोग्यवृत्ति-साध्यवत्प्रतियोगिताकान्योन्याभावाधिकरणनिरूपित-वृत्तित्वाभाव यदि तृतीयलक्षण का स्वरूप है तो केवलान्वयिसाध्यक "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" सद्धेतु में अव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि साध्यवत्त्वावच्छिन्न-वाच्यत्ववत्त्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकान्योन्याभाव के अप्रसिद्ध होने पर भी "घटो न" "पटो न" इत्याकारक वाच्यत्ववत्प्रतियोगिकान्योन्याभाव के प्रसिद्ध होने पर केवलान्वयिसाध्यकसद्धेतु में अव्याप्ति नहीं होगी। एवं केवलान्वयिसाध्यकसद्धेतु में तृतीय लक्षण की अव्याप्ति को दृष्टान्त के रूप में स्वीकार करके नानाधिकरणक साध्यक सद्धेतु में भी अव्याप्ति का प्रदर्शन करना संगत नहीं है। अर्थात् प्रसिद्ध कवेलान्वयिसाध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति के अभाव होने से उसको दृष्टान्त देकर नानाधिकरणकसाध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति प्रदर्शन करने से दृष्टान्तहानि दोष की प्राप्ति होती है।

माथुरी

तत्रापि तादृशान्योन्याभावस्य प्रसिद्धत्वेऽपि तद्वति हेतोर्वृत्तेरेवाऽव्याप्तेर्दुर्वारत्वात्।

"न च वाच्यम्" इत्यादि वाक्य से दृष्टान्तहानि दोष का निवारण करते हुए स्वयं ग्रन्थकार कहते हैं–"तत्रापि.....दुर्वारत्वात्।" अर्थात् साध्यवत्प्रतियोगिकान्योभाव से "इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्" यहाँ पर "घटो न" "पटो न" इत्याकारक अन्योन्याभाव तो प्रसिद्ध है किन्तु "घटो न पटो न" इस प्रकार अन्योन्याभाव के अधिकरण मठादि होंगे, मठादि निरूपित वृत्तिता ही ज्ञेयत्व में (ज्ञानविषयत्वं ज्ञेयत्वम्- सर्वत्र विद्यमान है, केवलान्वयि है) विद्यमान है, मठादि निरूपित वृत्तिता का अभाव ज्ञेयत्व में अविद्यमान होने से तृतीयलक्षण की अव्याप्ति का वारण नहीं कर सकते। अतः केवलान्वयिसाध्यक स्थल में अव्याप्ति का विद्यमान होने से उसको दृष्टान्त देकर नानाधिकरणक साध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति प्रदर्शन करना संगत है। अर्थात् दृष्टान्तहानि दोष नहीं होगा।

माथुरी

यद्वा– साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावपदेन साध्य-वत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव एव विवक्षितः, न चैवं पञ्चमाभेदः, तत्र साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्या-भाववत्त्वेन प्रवेशः, अत्र तु तादृशान्योन्याभावाधिकरणत्वेन, इत्यधिकरणत्वप्रवेशाप्रवेशाभ्यामेव भेदात्।

"यद्वा" कल्प के रूप में स्वयं ग्रन्थकार कहते हैं– "केवलान्व-यिन्यभावाद्" इस प्रकार मणि ग्रन्थ से यह प्रतीत होता है कि मणिकार को सिर्फ केवलान्वयिसाध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति अभिमत है, एवं नानाधिकरणक साध्यक सद्धेतु में तृतीय लक्षण की अव्याप्ति अनभिमत है। क्योंकि नानाधिकरणक साध्यक सद्धेतु में अव्याप्ति के निवारण के लिए साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव स्वरूप तृतीय लक्षण को स्वीकार करना होगा, और इस लक्षण में प्रतियोग्यवृत्तित्व का विशेषण का कोई आवश्यक भी नहीं है। एवं

साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावपद से साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-कान्योन्याभाव को समझना होगा, और पंचम लक्षण का स्वरूप-साध्यवत्वा-वच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववन्निरूपितवृत्तित्वाभाव है, साध्यवत्त्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकान्योन्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव यह तृतीय लक्षण का स्वरूप है। तृतीय लक्षण में अधिकरणत्वपद का प्रवेश है जो पंचम लक्षण में नहीं है। एवं पंचम लक्षण में "वत्त्व" अंश का प्रवेश है जो कि तृतीय लक्षण में नहीं है, अतः वत्त्व एवं अधिकरणत्व पदों के भिन्न होने से पुनरुक्ति नहीं होगी।

माथुरी

अखण्डाभावघटकतया च नाधिकरणत्वांशस्य वैयर्थ्यमिति न कोऽपि दोष इति दिक्।

अधिकरणत्व" अंश का प्रवेश की अपेक्षा "वत्त्व" अंश का तृतीय लक्षण में प्रवेश करने से शरीरकृतलाघव होता। लाघवपक्ष को स्वीकार करके "साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववन्निरूपित वृत्तितवाभाव" को तृतीयलक्षण के रूप में मान लेना चाहिए था? इसके समाधान में ग्रन्थकार कहते हैं "साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्या-भावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वं नास्ति "यह अभाव एक अखण्डाभाव है, अर्थात् साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वं नास्ति, एवं साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववन्निरूपितवृत्तित्वं नास्ति" ये दोनों अभाव परस्पर भिन्न हैं, क्योंकि प्रतियोग्यंश में विलक्षणता ही अभावों की स्वतन्त्रता को निर्धारण करती है। अतः अधिकरण के स्थान पर वत्त्व, एवं वत्त्व के स्थान पर अधिकरणत्व का प्रवेश संगत नहीं है। इसलिए दोनों लक्षण परस्पर में भिन्न हैं।

विशेष– "अधिकरणत्व" और "वत्त्व" दोनों एक पदार्थ नहीं है। अधिकरणत्व व्याप्यधर्म है, और "वत्त्व" अर्थात् सम्बन्धित्व व्यापकधर्म है। जिस प्रकार वृत्यनियामकसम्बन्ध से अधिकरणत्व नहीं होता है, किन्तु वृत्यनियामकसम्बन्ध से वत्त्व या सम्बन्धित्व सम्भव है, जैसे "धनवान् चैत्रः" इस प्रतीति में वृत्यनियामक स्वामित्वसम्बन्ध से धनविशिष्ट या धनसम्बन्धि चैत्र का अन्वयबोध होता है, किन्तु स्वामित्व सम्बन्ध से

धनाधिकरण चैत्र का अन्वयबोध कदापि सम्भव नहीं है, क्योंकि उक्त स्थल में वृत्यनियामक स्वामित्व सम्बन्ध से धन सम्बन्धि पदार्थ का एकत्र अन्वय और धनाधिकरणत्व का उस सम्बन्ध से वहीं पर अनन्वय होने से "वत्त्व" और "अधिकरणत्व" परस्पर भिन्न पदार्थ हैं ऐसा सिद्ध होता है। यहाँ पर थोड़ा सा ध्यान देना चाहिए कि दोनों लक्षणों में 'वत्त्व' या अधिकरणत्व इनमें भले जिसका प्रवेश हो उसमें हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि दोनों लक्षणों में साध्यवद् भेद का वैशिष्ट्य स्वरूपसम्बन्ध ही है। स्वरूपसम्बन्ध वृत्तिनियामक सम्बन्ध है, अतः स्वरूपसम्बन्ध से जिस प्रकार अधिकरणत्व प्रसिद्ध है वैसे ही उस सम्बन्ध से सम्बन्धित्व भी प्रसिद्ध है, और पुनरुक्तिदोष के भय से तृतीयलक्षण की प्रतियोगिता में साध्यवत्त्वावच्छिन्नत्व का निवेश नहीं किया जा सकता, यह भी संगत प्रतीत नहीं होता, और इस पर विशेष चिन्तन की आवश्यकता है।

।। इति शम् ।।

तृतीय लक्षण का हिन्दी व्याख्यान सम्पन्न

चतुर्थं व्याप्तिलक्षणम्

चतुर्थलक्षणहिन्दीव्याख्याकारः

प्रो० झोपाह्वो महानन्दः

सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्